बुन्देलखण्डमें जैन-धर्मके प्राचीनतम प्रतीक

चन्द्रभूषण त्रिवेदी

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली

बुन्देलखण्डको प्रकृतिने बड़े ही सुन्दर ढंगसे संजोया है। इस क्षेत्रमें यहाँके शैल-गिरि, गहन-वन और सरिताओंने धर्म एवं संस्कृतिमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यह ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मोंकी जहाँ तपोभूमि है, त्रिवेणी कई सहस्र वर्ष पूर्वसे अबाध गतिसे प्रवाहित होती रही है। विन्ध्य शृखलाओंके मध्यमें बसे इस भूमिखण्डमें विभिन्नताके साथ ही एकरूपताका विराट् दर्शन होता है। यह तपोभूमि पावन वेत्रवती (बेतवा), यमुना, दशार्ण (धसान), उर्वशी (ओर), तमसा (टमस), शुक्तिमती (केन) सहस्रों वर्षसे जन-मानसको प्रेरित करती हुई पतित-पावन गंगामें मिल जाती हैं। विदिशा तीर्थंकर शीतलनाथजीकी जन्मस्थली रही है। मौर्यकालके उपरान्त गुप्तकाल तथा मध्यकालमें यहाँ प्रतिहार, कलचुरि एवं चन्देल नृपोंके कालमें जैनधर्म पूर्ण रूपसे पल्लवित एवं पुष्पित हुआ। प्रमाण-स्वरूप आज भी संभवतः ऐसा कोई ग्राम न हो जहाँ जिन-अवशेष उपलब्ध न हों।

पुरातत्वीय प्रमाणोंके आधारपर यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण एवं बौद्धधर्मोंसे पूर्व जैन-धर्ममें सगुणोपासना प्रारम्भ हुई थी। इस सन्दर्भमें मोहेंजोदड़ोंसे प्राप्त एक सेलखड़ीकी मुद्रा तथा हड़प्पासे प्राप्त लाल पाषाणका एकबन्ध उल्लेखनीय है। मुद्राके दृश्यका अंकन इस प्रकारका है।

एक श्रवण, कायोत्सर्ग मुद्रामें आच्छादित वनमें प्रदर्शित है। वृषभके निकट एक गृहस्थ अंजलिमुद्रामें हैं। इस पंक्तिके नीचे सात पुरुष कायोत्सर्ग मुद्रामें है।

इन कलाकृतियोंको निश्चित रूपसे जैनधर्मसे निरूपित करना कठिन है। जब तक कि सिन्धु लिपिका पठन न किया जा सके। इसके अतिरिक्त इतने वर्षोंके गहन अध्ययनके फलस्वरूप भी जिन कलात्मक वास्तु एवं शिल्पीय कृतियोंको मूल भारतीय कला एवं धर्मसे पृथक् करना अत्यन्त कठिन है। इनके मूल सिद्धान्त वेदोंमें निहित हैं।

जिन आख्यानोंमें भगवान महावीरकी समकालीन प्रतिमाका उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि वीतमयपतन नगर (जिसकी भौगोलिक स्थिति अस्पष्ट है) के नृपति उद्दामनकी महिषी चन्दन काष्ठसे निर्मित तीर्थंकरकी पूजा करती थी। इसी आख्यानका प्रतिरूप भगवान बुद्धके समकालीन कौशम्बीके राजा उदयनसे सम्बन्धित है। ऐसा ही उल्लेख दशपुर नगर (मन्दसौर) के सम्बन्धमें जीवन्तस्वामीकी प्रतिमाका उल्लेख है। इन आख्यानोंका समीकरण पुरातत्वीय सन्दर्भमें नहीं हो सका है। सम्भवतः उस कालमें प्रतिमायें काष्ठ ही की निर्मित की जाती थीं।

पुरातत्वीय सन्दर्भमें उल्लेख चेदि राजवंशके महामेघवाहन कुलके तृतीय नृपति खारवेल (प्रथम शती ई० पू०) के उदयगिरि-खण्डगिरिकी गुफाओंमें उत्कीर्ण लेखमें अंकित है। उसके अनुसार खारवेल नन्दराज द्वारा बलपूर्वक ले जाई गई तीर्थंकर प्रतिमाको पुनः ले आया था। इसके अतिरिक्त पटना संग्रहालयमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोहानीपुरसे प्राप्त ओपयुक्त प्रस्तर प्रतिमा जो कि यक्ष परम्परासे वेष्टित है का निर्माणकाल लगभग ई०पू० तीसरी शतीमें हुआ।

मूर्तियोंके अतिरिक्त ई० पू० तथा ईस्वी पश्चात् जैन-धर्मावलम्बी मांगलिक चिह्नोंको पूजते थे। उनका ही अंकन आयागपट्टोंमें मिलता है। प्राक्-कुषाण एवं कुषाण कालके आयागपट्ट मथुरा (शौरीपुर) से प्राप्त हुये हैं।

सम्भवतः गहन वनोंमें प्रतिमाओंका निर्माण आसान नहीं था। जिन श्रवण भ्रमणशील होते थे तथा अपना निवास प्रायः गिरि कन्दराओं हीमें रखते थे। ऐसी कन्दराओंका प्रमाण जो कि बौद्धधर्मसे सम्बन्धित है, सीहोर जिलेकी बुधनी तहसीलमें पानगुरारिया नामक स्थानमें बहुमात्रामें उपलब्ध है। स्तरीय शिला-खण्डोंमें कन्दरायें प्राकृतिक रूपसे ही निर्मित हो जाती थीं तथा आग्नेय शिलाओंमें निर्माण तक्षण विधिसे ही किया जाता था। लेखकको पुरातत्वीय सर्वेक्षणके फलस्वरूप चन्देरी, जो कि आज भी जैनधर्मावलम्बियोंका अतिशय क्षेत्र है, में प्राप्त हुए हैं। इस महत्त्वपूर्ण खोजसे जैनधर्मका प्रवाह ईस्वी शती पूर्व कालका निर्धारित किया जा सकता है। लगभग एक सहस्र वर्ष पश्चात् इस तीर्थस्थलका पुनः पुनरुद्धार हुआ जिसके फलस्वरूप जैन प्रतिमायें एवं देवालयोंका निर्माण देवगढ़ (पथराड़ी देवगढ़), बूढ़ी चन्देरी, थूबौन तथा शिवपुरी क्षेत्रमें बहुसंख्यामें हुआ। पन्द्रहवीं-सोलहवीं शतीमें ग्वालियर दुर्गमें मरीमाताके समान चन्देरीमें भी विशालकाय प्रतिमाओंका निर्माण तोमर शासकोंके कालमें हुआ। मुस्लिम शासनकालमें जिनालयोंका निर्माण विशाल चट्टानोंको काटकर किया गया जिसे खण्डारजी कहा जाता है। इस कालमें मालव सुलतान दिलावरखाँ गोरी था।

प्राचीन कालमें चन्देरी मथुरा तथा विदिशासे जुड़ा था। यह महत्त्वपूर्ण स्थल वनोंसे आच्छादित किले एवं खण्डारजीके शीर्ष भागमें स्थित पठघटियाके नामसे जाना जाता है। सम्पूर्ण शिलाको सात मीटर चौड़ा तथा तीन मीटर गहरा उकेरा गया है। इसका घाटी-मार्ग प्रस्तर खण्डोंसे भरा है। सम्भव है कि इन खण्डोंको हटाये जानेके उपरान्त सोपान मार्ग मिल सके। पश्चिमामुखी दीवाल पर दो लेख उत्कीर्ण हैं एक विक्रम संवत १५७१ का तथा दूसरा लेख ब्राह्मी लिपिमें है। अक्षर रचनाके अनुसार यह लेख लगभग दूसरी पहली शती ई० पू० का है।

उपर्युक्त लेखके साथ निम्न मांगलिक चिह्न उत्कीर्ण हैं—

(१) नन्दीपद (नंद्यावर्त), (२) स्वास्तिक, (३) विहग, (४) मीन-मिथुन, (५) पद्म, (६) शंख, (७) त्रिरत्न, (८) वज्र, (९) श्रीवत्स, (१०) ध्वज, (११) तालवृत्त (व्यजन) अथवा दर्पण।

मीन-मिथुनको एकसे अधिक बार दर्साया गया है। उपर्युक्त प्रतीकोंमें से कईकी कल्पना अष्ट मांगलिक चिह्नोंसे की गयी है।

तेसि सां तोरणाण उप्पि अट्ठठट्ठ मंगलगा परुणता, तं जहा—

सोत्थिय, सिरिवच्छ, नन्दियावर्त वद्धमाणग, भद्दासण, मच्छ, दप्पण, जाव, पडिरुवा।

उपर्युक्त शुभ प्रतीकोंके अतिरिक्त पठारके ऊपर वृत्ताकार द्रोणियाँ बनी हुयी हैं जिनमें मार्जन हेतु संभवतः जल संगृहीत किया जाता था।

मानव संस्कृतिके अभ्युदयसे ही पूजनके भावरूपको महत्त्व दिया जाता था न कि द्रव्य भावको। निर्गुण उपासनाके साथ ही सगुण उपासनाका उद्भव प्रारम्भ हो गया था। जब प्रतीक सर्वसाधारणको बोध करनेमें असफल हो जाते हैं तभी प्रतीकात्मक वस्तु कालान्तरमें दो रूपोंमें परिणत हो जाती है एक अतदाकार तथा द्वितीय तदाकार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त लाच्छन निम्न अरहतोंको निरूपित किये जा सकते हैं स्वस्तिक शीतलनाथ जी; विहग (पड़िरुवा) सुमतिनाथजी; मत्स्य, अरहनाथजी; पद्म, पद्मनाथजी; शंख, नेमिनाथजी; वज्र, धर्मनाथजी हैं। शेष विशिष्ट मांगलिक चिन्ह हैं जिनमें श्रीवत्स प्रत्येक तीर्थकरके वक्षपर विद्यमान रहता है।

अभिलेखके बाईं ओर तालवृन्त अथवा व्यजन तथा दाहिनी ओर स्वस्तिक है। अभिलेखका अभिप्राय अस्पष्ट है। इसके आधार पर इन मांगलिक चिन्होंकी तिथि दूसरी-पहली शती ई० पू० निर्धारित की जा सकती है। अतः स्पष्ट है कि बुन्देलखण्डमें जैनधर्मका प्रचलन प्राचीन है। इस क्षेत्रमें सर्वेक्षणकी अत्यन्त आवश्यकता है। यह सम्भव है कि यहाँ जैनधर्मके स्तूप तथा प्राकृतिक गुफाओंमें और भी अवशेष मिल सकें। लेखकी प्रतिलिपि निम्न है। जिसे भ (ड) क बु पढ़ा गया है (भारतीय पुरातत्त्व पत्रिका, पृ० ५३-७४, १९७१-७२)।

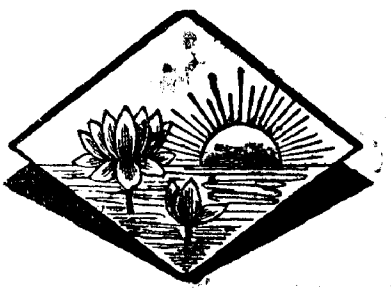

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org